महाकवि सूरदास की भक्ति भावना

डॉ. अंजु

सहायक प्रोफसर हिंदी विभाग

श्री गुरु नानक देव खालसा कॉलेज, दिल्ली

मध्यकालीन भारतीय साहित्य में भक्ति की जो वेगमयी धारा प्रवाहित हुई, उससे समाज का हर क्षेत्र प्रवाहित हुआ। संत, सूफी,राम, कृष्ण आदि जो भी आधारभूत शिलाएँ उसमें दिखाई देने लगी उनमें रूप भेद से समानता ही नजर आने लगी। कवि हिंदुस्तान की किसी भी दिशा का हो, सबकी मनोदशा में जो एकात्मकता थी, उसका संकेत अष्छाप के कवि सूरदास और उनकी भक्ति भावना में देखा जा सकता है।

'भक्ति' शब्द की निर्मिति 'भज्' धातु में 'क्िन्' प्रत्यय लगाने से हुई है जिसका अर्थ होता है – 'सेवा करना' या 'ईश्वर के प्रति सेवा भाव।' शाण्डिल्य भक्ति-सूत्र में भी यही बात दुहराई गयी है कि 'सापरानुरक्तिरीश्वरे' अर्थात 'ईश्वर में पर अनुरक्ति ही भक्ति है। भक्ति के स्वरूप के बारे में नारद भक्ति सूत्र में बताया गया है कि भक्ति ईश्वर के प्रति प्रेम रूपा है और अमृत स्वरूपा भी है, जिसे पाकर मनुष्य तृप्त हो जाता है, सिद्ध व अमर हो जाता है।'1सूरदास के गुरु वल्लभाचार्य ने भी भक्ति के विषय में अपना प्रकट किया है कि 'ईश्वर में सुदृढ़ और सनत स्नेह ही भक्ति है।'1

'भागवत' में भक्ति के चार प्रकार बताएं गए हैं – (1) सात्विक भक्ति, (2) राजसी भक्ति, (3) तामसी और (4) निर्गुण भक्ति। 'नारदभक्तिसूत्र' भक्ति का प्रसिद्ध ग्रंथ है जिसमें प्रेमाभक्ति का विशद विवेचन करने के उपरांत उसकी ग्यारह आसक्तियों का उल्लेख किया गया है – (1) गुण महात्म्यासक्ति, (2) रूपा सक्ति, (3) पूजा सक्ति, (4) स्मरण सक्ति, (5) दास्यासक्ति, (6) संख्या सक्ति, (7) कांता सक्ति, (8) वात्सल्यासक्ति, (9) आत्म-निवेदन सक्ति, (10) तन्मयासक्ति और (11) परम-विरही सक्ति।

महाकवि सूरदास की भक्ति साधना के दो पर्याय माने जा सकते हैं- वल्लभ संप्रदाय में दीक्षित होने के पूर्व और उसके बाद। कहा जाता है कि दीक्षित होने से पूर्व सूरदास सिर्फ विनय के पद ही सिखा करते थे। भक्ति मूलत: भावोद्गार है। सूरदास ने अपनी भक्ति में ईश्वर के समक्ष अनेक प्रकार की विनय भावना व्यक्त की है। सूरदास ने स्वयं को अपने ईश्वर का तुच्छ सेवक मानते हुए उनके समक्ष दैन्य प्रकट किया है। इस कारण सूरदास की भक्ति 'दास्य भाव' की भक्ति कहलाती है जिसमें भक्त स्वयं को अपने ईश्वर का दास मानकर उनकी सेवा और भक्ति करता है।

'हौं हरि सब पतितन कौ नायक'

'प्रभु हौं सब पतितन कौ 'टीकौ।'2

वल्लभाचार्य सूरदास के इन दीनतापूर्ण पदों को सुना और उन्होंने सूरदास से कहा कि -

'जो सूर ह्वै कै ऐसो घिघियात काहे को है, कुछ भगवत् लीला वर्णन करौ।'3

और वल्लभाचार्य की प्रेरणा से सूरदास कृष्ण का लीला गान करने लगे। पुष्टिमार्ग में दीक्षित होने के बाद सूरदास ने संसार की भरपूर निंदा करने के बदले कृष्ण का लीला-गान किया और उसमें भी पहले के ऋणात्मक वैराग्य भाव को धनात्मक माधुर्य भाव में पर्यवसित करने में सफलता पाई। ज्ञान, वैराग्य, तप, यज्ञ,योगादि का तीव्र विरोध किया। सूरदास के अनेक पदों में इस पुष्टिमार्गीय भक्ति का स्वरूप झलकता है –

"जब मोहन मुरली अधर धरी। गृह व्यौहार तजे आरज पथ बसत न संक करी।"4

भक्ति भावना के प्रथम चरण में सूरदास 'ईश्वर-भक्ति' को इस संसार में व्याप्त भय एवं ताप से बाहर निकलने का एक मात्र रास्ता मानते हैं। उनका अनुराग ईश्वर के प्रति अप्रतिम है इसलिए सांसारिकता के प्रति उन्होंने विराग भाव व्यक्त किया है। सांसारिक सुखों की निंदा करते हुए सूरदास ने सभी सांसारिक कार्यों, सुखों और अवस्थाओं को दोषपूर्ण माना है। उनका मानना था कि निष्पक्ष आंखों से देखने पर ही अपने भीतर की अच्छाईयां और बुराईयां दिखाई पड़ती हैं और खुद के प्रति बरती गयी यही इमानदारी भक्त के हृदय में दैन्य भाव को जगाती है। इसी कारण सूरदास के विनय वर्णित इन आरंभिक पदों में दैन्य भावों की प्रधानता है। ईश्वर के गुणों की अधिकता और उनके समक्ष अपनी लघुता का भाव उन्होंने सूरसागर के आरंभ में बार-बार प्रकट किया हैं। वे कहते हैं कि अगर उन्होंने ईश्वर-भक्ति नहीं की तो उनका इस संसार में जन्म लेना ही व्यर्थ है –

"सूरदास भगवंत भजन बिनु धरनी जननी बोझ कत मारी"

सूरदास प्रभु तुम्हरे भजन बिनु जैसे सूकर स्वान-सियार।"5

सूरदास का मानना था कि ईश्वर अपने भक्तों पर असीम कृपा करते हैं। इसलिए उन्होंने ईश्वर को भक्ति वत्सल और हितकारी कहा है –

"ऐसे कान्ह भक्त हितकारी, प्रभु तेरो वचन भरोसौ सांचौ।"6

अपनी दुर्दशा के वर्णन द्वारा सूरदास प्रभु शरण में जाने की इच्छा बार-बार व्यक्त करते हैं –

"अबकि राखि लेहु भगवान।"7

सूरदास ने वात्सल्य भक्ति पर अधिक बल दिया। वल्लभ सम्प्रदाय की दसवीं प्रेमलक्षणा भक्ति,माधुर्य भक्ति, कान्ता भक्ति या दाम्पत्य भक्ति का केंद्र और फल वात्सल्य भक्ति ही है। माधुर्य भक्ति में भक्त की कुछ स्वार्थ भावना निहित रह जाती है। वह भगवान से प्रेम निवेदन करने के साथ ही साथ भगवान से कृपा की इच्छा रखती है। परंतु वात्सल्य भक्ति में किसी भी प्रकार की अभिलाषा नहीं रहती। यह सार्वजनी, चिरंतन और निष्काय है।

प्रोफेसर मोहिनी टाया लिखती हैं–'सूर ने वात्सल्य भक्ति का सांगोपांग विवेचन किया है। 'सूर सागर' में सहज तथा आहार्य वात्सल्य के प्रचुर उदाहरण मिल जाते हैं। नंद यशोदा,वासुदेव, देवकी,दशरथ,कौशल्या, गोपी आदि के साथ-साथ कवि ने गायों की वात्सल्य भक्ति का भी चित्रण किया है। वात्सल्य के सन्योग और वियोग दोनों पक्षोंपर भी कवि ने प्रकाश डाला है।'8

सूरदास के कृष्ण की बाल लीला, गोचारण लीला एवं सुदामा चरित्र जैसे अनेक प्रसंग पूर्णतः सख्य भक्ति से संबंधित हैं। सूरदास सुदामा द्वारा कृष्ण की दीनबंधुता एवं सख्य वत्सलता की महत्ता का वर्णन करते हैं –

"ऐसे मोहिं और कौन पहिचाने।

सुन सुंदरि दीन बंधु बिन कौन मिताई माने।।9

सूरदास की भक्ति-भावना मुख्यत: सगुणाश्रित है। गोपी उद्‌ध्व प्रसंग में कवि ने निर्गुण भक्ति और सगुण भक्ति में तर्क स्थापित कर सगुण भक्ति की श्रेष्ठता प्रतिपादित की है। परंतु इस कारण से ही हम उनकी भक्ति-भावना में निर्गुण तत्व को अस्वीकार नहीं कर सकते। कृष्ण की सगुण लीला का वर्णन करते समय कई पदों में सूर ने निर्गुण और निराकार ब्रह्म के ओर संकेत किया है। निगम जिसे 'नेति' कहता है वह ही नंदन कृष्ण बनकर यशोदा के पालने में झुलता है, नंद की दांवरी में बांधता है और राधा के साथ केलि करता है। 'सूरासागर' के आरम्भिक पदों में यह प्रतीत होता है कि सूरदास भक्त की दृष्टि से निर्गुणवादी है, किंतु अपने कवि हृदय में निर्गुण तत्व को अगम्य जानकर सगुण स्वरूप के लीला का गान करना चाहते हैं–

'अविगत गति कछु कहत न आवे।

ज्यों गूंगे मीठे फल कौ रस अंतरगत ही भावै।

परम स्वाद सबही सु निरंतर अमित तोष उपजावै,

मन वानी की अगम अगोचर, सो जाने को पावै।'10

महाकवि सूरदास में जितनी सहृदयता और भावुकता है, प्राय: उतनी ही चतुरता और वाग्विदग्धता भी है। किसी बात को कहने के उन्हे न मालूम कितने टेढ़े-मेढ़े ढ़ंग आते थे। गोपियों के वचन में कितनी विदग्धता और वक्रता भरी है। यहाँ पर वैदग्धता का वर्णन करते हुए गोपियाँ किस प्रकार कृष्ण के अंगो के उपमानों को लेकर भक्ति करती हैं–

'ऊधो ! अब यह समुझि

नंदन के अंग-अंग प्रति उपमा न्याय दई।

कुन्तल कुटिल भँवर भरि भाँवरि मालति भुरैलई।

तजत न गहरु कियो कपटी जब जानी निरब गई।।'11

महाकवि सूरदास ने गुरू भक्ति को भी महत्वपूर्ण माना है उन्होंने मगलाचरण ही में हरि की असीम कृपा का वर्णन किया–

'चरण कमल बंदों हरिराई।

जाके कृपा पंगु गिरि लंघै, अंधे कौ सब कछु दरसाई।

बहिरा सुनै गूंग पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र धराई,

सूरदास स्वामी करूणामय, बार–बार बंधों तिहिं पाई॥'12

इसी प्रकार से सूर ने आराध्य देव से संबंधित सभी वस्तुओं को वंदनीय माना है। गुरु की महानता का वर्णन करते हुए सूरदास ने भगवान से उंचा स्तर माना है–

'गुरु स्याम गुरु ऐसे समरथ,

छिन में ले उधरे।

तिनके चरन–सरोज दरसन,

गुरु कृपा सहाइ॥'13

'सूरसागर और भागवत' दोनों में भक्ति की आत्मनिवेदन विधा का परिपाक हुआ है। आत्मनिवेदन के लक्षण और फल के बारे में चर्चा की गई है।'14

सूरदास ने भक्ति को साध्यरूपा माना है, जो अविद्या नाश का करण है, मुक्ति का सरलतम् उपाय तथा ज्ञान के सिद्ध होने का कारण है। ज्ञान और वैराग्य को कवि ने भक्ति को साधन मात्र माना है। भक्ति के बिना इन साधनों की निरर्थकता उसने प्रदर्शित की है। अनन्य भक्ति की चरम परिणति साधन और साध्य की एकरूपता में ही सूर ने दिखाई है।सर्वात्म समर्पण युक्त हरिभक्ति को ज्ञान, योग, तप, कर्म कांड आदि किसी साधन की आवश्यकता नहीं रहती। यह स्वयं इसका साधन और साध्य है–

'तुम्हारी भक्ति हमारे प्रान,

और न मेरी इच्छा कोई।

भक्ति अनन्य तुम्हारी होइ,

होइ सु मम उद्धार्॥'15

पुष्टि मार्ग में भगवन कृपा को भक्ति का अन्यतमसाधन माना गया है। सूरदास के विनय के पदों में भगवान से कृपा की याचना अत्यंत दीन भाव से व्यक्त हुई है–

'जिनके ब्रह्म अनिमिष अनेक गम अनुचर आज्ञाकारी,

और देव सब रंक भिखारी त्यागे बहुत घनेरे।

सूरदास प्रभू तुम्हारी कृपा ते पाये सुख बहुत घनेरे॥'16

नारद भक्ति के सुत्र मे गुरुकृपा को महत्कृपा कहा गया है। गुरु की कृपा बड़े सौभाग्य से प्राप्त होती है जिनके बिना भक्ति की प्राप्ति संभव नहीं होती। सूरदास द्वारा गुरु कृपा को भक्ति के साधन के रूप में किया गया है–

'गुरु परसाद होत यह दरसन सरसठ बरस प्रवीन,

गुरु बिनु ऐसी कौन करे।

सूर स्याम गुरु ऐसो समरथ,

छिन में ले उधरे।'17

नारद के भक्ति सूत्रों में भक्ति का फल भक्ति माना गया है। सूरदास की भक्ति स्वत:पूर्ण है। उन्होंने भी भक्ति का फल भक्ति ही माना है–

'सूरदास प्रभु कृपावंत हवै,

लै भक्तानि में डारो॥'18

भक्ति में भगवान भी भक्त से प्रेम करने लगते हैं। प्रेम ही ईश्वर तक पहुचाँने का साधन है–

'सूरदास प्रभु भक्तानि के बल,

भक्ति प्रेम बढ़इए।

हम भक्तनि के भक्त हमारे'

अत्यंत प्रिय मो भक्त्॥'19

इसी बीच प्रोफेसर मोहिनी टाया ने भक्ति की विचारधारा को इस प्रकार प्रस्तुत किया,' भक्ति के बिना जीवन व्यर्थ है। सूरदास भक्ति विहीन जीवन को मृत्यु का अन्य नाम मानते हैं। भक्ति ही प्राण है---

'तुम्हारी भक्ति हमारे प्राण्।'20

1. सारांश रूप में कहा जा सकता है कि सूरदास के काव्य में सगुण और निर्गुण भक्ति का समावेश मिलता है। भक्ति के सगुण और निर्गुण आदि उपासक देवों में भिन्नता केवल भाव के आधार की दृष्टि से ही की जा सकती है। सोऔरदासको भक्त कहना उचित होगा, उनकी भक्ति-भावना मनव समाज को सन्मार्ग पर चलाती रहेगी।

संदर्भ:

2. नारद सूत्र भक्तिमार्ग, पृ.3/33
3. प्रोफेसर मोहिनीटाया, सूर का वात्सल्य,पृ.133
4. सूरदास, सूरसागर, पृ.16
5. वही, पृ.19
6. वही, पृ.4
7. वही, सूरसारावली, पृ.18
8. प्रोफेसर मोहिनीटाया, सूरसागर: एक विवेचन,पृ.10
9. सूरसागर, पृ.13
10. वही, पृ.35
11. वही, पृ.113
12. वही, पृ.134

13. वही, पृ.135
14. वही, पृ.13
15. वही, पृ.56
16. वही, पृ.35
17. प्रोफेसर मोहिनीटाया, भक्ति दर्शन: मूल्यांकन, पृ.136